‘‘ बौद्ध धर्म और साहित्य के अंतर्गत मानववाद से राष्ट्रवाद की परिकल्पना’’

अतुल नारायण सिंह

शोध छात्र

प्राचीन इतिहास विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ईमेल-

ans251290@gmail.com

19वीं शताब्दी में जन विश्व मानववाद की ओर सोचना प्रारंभ कर रहा था और उसी के माध्यम से एक राष्ट्रवादी अवधारणा सम्पूर्ण विश्व में सिर उठा रही थी। उससे बहुत समय पूर्व ही भारत में महात्मा बुद्ध ने अपने वचनों के माध्यम से मानववाद को आधार बनाकर सर्वकल्याण हेतु ऐसे मार्ग का प्रतिपादन किया जिसमें स्वयमेव राष्ट्र कल्याण की भावना भी निहित थी। गौतम बुद्ध की महत्ता आज सम्पूर्ण विश्व में मात्र उनके करूणा, मानवता और समता सम्बंधी विचारों के कारण है। बौद्ध धर्म कोई आकस्मिक घटित घटना नहीं अपितु इसके उद्भव की पृष्ठभूमि में वैदिक यज्ञवाद, कर्मकाण्ड और निरन्तर हो रहे नैतिक पतन के साथ-साथ जटिल होती जा रही सामाजिक व्यवस्था एक महत्वपूर्ण कारण थी और इन कारणों के आलोक में उद्भूत बौद्ध संस्कृति बुद्ध के संकल्पों, आशाओं और आकांक्षाओं के अनुरूप समस्त मानवता की शांति तथा आत्मोन्नति की स्थापना करने में सफल सिद्ध हुई। बौद्ध धर्म मानव-मानव के अंर्तद्वन्दों, विरोधों एवं संघर्षों की खाईं पाटने और उनमें समन्वय, सौहार्द तथा विश्वजनीन भातृत्व की स्थापना करने में सफल रही।

प्रसिद्ध जर्मन मनोविज्ञानी और दार्शनिक कार्ल जैस्पर्स ने अपने एक अध्ययन के अंन्तर्गत यह प्रतिपादित किया कि दुनिया में ई0पू0 800 से 200 के मध्य जाने अनजाने में ऐसी परिस्थितियां पैदा हुई कि सम्पूर्ण जगत में इसी समय महान मानवता के रक्षकों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों यथा, चीन में लाओत्से और कन्फ्यूशियस, यूनान में पेरेमेनाइडीस और इंपेडोक्लस, ईरान में जरथुस्त्र और भारत में महावीर और बुद्ध अवतरित हुए।1 इस समय के परिवेश में हम पाते हैं कि इस समय तक एकात्मवादी मानवता अपना स्थान बनाने लगी, सामाजिकता, आत्मीयता, राष्ट्र, संस्कृति सभी को दांव पर लगाकर लोग स्वयं को आगे बढ़ाने की फिराक में लगे थे। अतः वह समय बहुत कुछ वैसे ही था जैसा वर्तमान विश्व या भारत में घटित हो रहा। इस परिप्रेक्ष्य में बौद्ध धर्म, दर्शन, कला हमारा मार्गदर्शन करती है कि हम कैसे अपने को बेहतर ढंग से संचालित कर राष्ट्र, समाज और संस्कृति को सुरक्षित कर सकते हैं।

महात्मा बुद्ध ने मध्यम मार्ग का उपदेश देते हुए कहा कि ‘मनुष्य को सभी प्रकार के आकर्षण और कायाक्लेश से बचना चाहिए, अर्थात इन दीनाअतियों के बीच से दुःख निरोध हेतु प्रयास करना चाहिए।2 यदि हम तथागत के इस कथन को वर्तमान संदर्भ में देखें तो हम पायेंगे कि आज सांसारिक जितने भी दुराग्रह हैं वो सभी मात्र एक कारण से घट रहे हैं और वह है ‘आकर्षण’। यदि हम अपनी भावनाओं और जरूरतों का प्रसार वहीं तक करें जहाँ कि कि हमारी पहुँच हो और यदि हम अपनी सीमाओं के बाहर किसी व्यक्ति या वस्तु से आकर्षित होकर उसका अनुगमन करते हैं तो यह निश्चित है कि हमें अब बुराई के मार्ग पर आगे बढ़ना पड़ेगा और यह मार्ग हमारी राष्ट्र की भावना और हमारे समाज को नुकसान पहुंचा कर ही व्यक्तिगत लाभ देगा। महात्मा ने सामान्य

जनमानस के लिए जिस धर्म को अपनाने को प्रेरित किया उसे उपासक धर्म3 कहा गया जो भिक्षु धर्म से सर्वथा भिन्न था। दीघनिकाय के सिंगालोवादसुत्त में हमें इस धर्म का विवरण प्राप्त होता है जिसे बुद्धघोष ने गहिविनय की संज्ञा दी है। इस उपासक धर्म के अंतर्गत गृहस्थों को अहिंसा, प्राणियों पर दया, सत्यभाषण, माता-पिता की सेवा, गुरुजनों का सम्मान, ब्राह्मणों और श्रमणों को दान तथा मित्रों, सम्बन्धियों व परिचितों के साथ अच्छा व्यवहार प्रमुख रूप से बताये गये हैं। यदि आप उपरोक्त बातों को देखें तो हमें यह सभी धर्मों में समान रूप से मिलती है लेकिन महात्मा बुद्ध ने तत्समय इसे सिद्धान्त रूप में प्रतिपादित किया तो यह स्पष्ट है कि इस समय तक इन मानवीय संस्कारों का क्षरण हो गया रहा होगा ऐसा मेरा मानना है। अहिंसा, प्राणियों पर दया और सत्यभाषण के द्वारा मनुष्य राष्ट्रनिर्माण में अत्यन्त ही महती भूमिका निभाता है जिससे प्रथमतः तो यह कि यदि किसी राष्ट्र से अहिंसा को समाप्त कर दिया जाय तो वह स्वयमेव एक शांतिप्रिय राष्ट्र की कोटि में आ जायेगा, और जो मनुष्य शांतिप्रिय होगा और प्राणियों पर दया दृष्टि रखने वाला होगा और सदैव सत्य का साथ देने वाला हो तो एक राष्ट्र अपने नागरिकों से यह तीन अपेक्षायें आवश्यक रूप से कर अपने आपको सर्वशक्तिमान बना सकता है। माता-पिता की सेवा, गुरुजन का सम्मान, दान-दक्षिणा व सबसे अच्छे बर्ताव की उम्मीद सिर्फ इसलिए की जाती है कि राष्ट्र का नागरिक प्रथमतः अपने आने वाली पीढ़ी को मानवता का पाठ पढ़ा सके और बिना कुछ कहे वह एक आदर्शवादी समाज की ओर अपने राष्ट्र को आगे बढ़ा सके।

भारत वैदिक समय से ही एक जनतांत्रिक देश रहा है और महात्मा बुद्ध भी एक जनतांत्रिक भारतीय गणराज्य में जन्म लिए थे। अतः वे सदैव गणराज्यों और वैयक्तिक स्वतंत्रताओं की वकालत करते रहे। बुद्ध के धर्म में समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय का बोलबाला था। उसमें किसी भी प्रकार की असमानता शोषण व अन्याय नहीं था; बौद्ध धर्म में दीक्षित स्त्री-पुरुष सभी समान हो जाते थे। इस प्रकार इससे यह भी स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म का सर्वोत्तम लक्ष्य जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना करना था। बुद्ध ने अपने युग की राजनीति को काफी हद तक प्रभावित किया था। कई राजा उनके भक्त भी थे। राज्य के सात अवयवों यथा स्वामी, अमात्य, पुर, राष्ट्र कोष, दण्ड और मित्र (सुहत्) का उल्लेख हमें संस्कृत बौद्ध साहित्यों में भी प्राप्त होता है।4 महावस्तु में हमें यह विवरण प्राप्त होता है कि एक समय जब लोग एक दूसरे की खेतों में अन्न की चोरी करने लगे तब आपस में सभी लोगों ने मिलकर यह निर्णय किया कि उसमें से एक प्रधान को सर्वसम्मति से चुना जायेगा, बदले में उसे अपने शालि क्षेत्र के उपज का कुछ भाग देना स्वीकार किया।5

गौतम बुद्ध के उपदेशों का उद्देश्य उन लोगों को उत्तम मार्ग दिखाना था जो मार्ग से भटक गये थे। बुद्ध ने चार आर्य सत्यों दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध और दुखनिरोधगामिनी प्रतिपदा6 के द्वारा मानव जाति को सत्मार्ग पर लाने की चेष्टा की है। मानव शरीर दुख से विरत नहीं हो सकता यह उसका अभिन्न अंग है। अप्रियजनों से संयोग तथा प्रियजनों से वियोग एवं अभिलाषित वस्तु की अप्राप्ति भी दुःख है। अतः सर्वप्रथम हमें इसे पहचानना होगा कि आखिर हमारे दुःख का कारण क्या है? इसका मूल कारण तृष्णा रूप में हमारे समक्ष आता है क्योंकि हम जो भी करते हैं उसका प्रतिफल ही दुःख का कारण बनता है और इसे नष्ट कैसे किया जाय तो साधारण शब्दों में कहें तो तृष्णा सदैव त्याज्य है इससे हमें बचना चाहिए। तृष्णा से यदि स्वयं को बचाने में सफल हुए तो हमारे अन्दर धैर्य, सरलता संतोष, क्षमा जैसे गुण आसानी से पुष्पित-पल्लवित होकर हमें मानववादी दृष्टिकोण से एक कुशल मानव आसानी से प्राप्त हो जायेगा।

एक राष्ट्र अपने नागरिकों से सदैव अपेक्षा करता है कि उसका प्रत्येक नागरिक अपने राष्ट्र और उसके नागरिकों के प्रति संवेदनशील रहे और यह गुण स्वयंमेव प्रत्येक नागरिक में विकसित हो जायेगा यदि वह अष्टांगिक मार्गों7 का ईमानदारी से अनुगमन करे, जो निम्नांकित है -

1. राष्ट्रहित और मानवता के लिए क्या उचित-अनुचित है- यदि इस तथ्य को ध्यान में रखकर कोई कार्य किया जाय तो सदैव यह संभावना बनी रहेगी कि किसी कार्य से मानवता को हानि नहीं होगी और यदि मानवता को क्षति नहीं पहुंचेगी तो यह तय है कि वह राष्ट्र अपने अन्दर समस्त मूल्यों के लिए हुए दुरतगति से विकासपथ पर अग्रसर रहेगा। (सम्यक् दृष्टि)

2. प्रत्येक व्यक्ति या नागरिक सुमार्ग पर चलने का दृढ़संकल्प लें कि किसी भी परिस्थिति में वह गलत रास्ते पर चलकर गलत तरीके से किसी भी कार्य को नहीं करेगा ऐसा प्रत्येक नागरिक दृढ़संकल्प कर ले तो कोई भी राष्ट्र आदर्शवादी रूप को प्राप्त कर सकता है। (सम्यक् संकल्प)

3. व्यक्ति अपने सम्बन्धों को सर्वाधिक क्षति अपनी वाणी पर नियंत्रण न होने के कारण स्वयं पहुंचाता है जिससे वह कभी-कभी न चाहते हुए भी इस वाक्जाल में फंस जाता और फिर मानवीय गुणों के नाते स्वयं कही हुई बातों की सत्यता को सही साबित करने के लिए आगे भी वाणी का नियंत्रण खो देता है और क्षति अंतिमरूप से स्वयं को पहुँचाता है। (सम्यक् वाक)

4. व्यक्ति को ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे दूसरों को कष्ट न पहुँचे। (सम्यक् कर्मान्त)

5. यदि प्रत्येक नागरिक अपने राष्ट्र के प्रति ईमानदार रहे और बिना किसी को हानि पहुंचा और बिना अन्याय किये अपनी आजीविका कमाये तो यह तय है कि वह स्वयं के साथ-साथ सम्पूर्ण मानवता के कल्याण में योगदान दे रहा है। (सम्यक् आजीव)

6. यदि हमारे आस-पास कुछ अच्छे कार्य अथवा सद्धर्म हो रहे हैं तो हमारा यह नैतिक दायित्व है कि हम उसका प्रसार करें। (सम्यक् व्यायाम)

7. हम सदैव चित्त, शरीर, वेदना आदि की सुचिता व चित्त-संताप को दूर रखें, यही वो कारण है जिससे मनुष्य इस सांसारिक कुचक्रों की मृगतृष्णा में अपने आपको उलझाकर समाप्त कर लेता है। (सम्यक् स्मृति)

8. चित्त की एकाग्रता। (सम्यक् समाधि)

शाक्य मुनि गौतम बुद्ध का शान्ति स्थापना के लिये प्रमुख सिद्धान्त मानव को महत्व प्रदान करना और मानवीय समता स्थापित करना था। उनकी स्थापना थी कि सभी मनुष्य समान हैं, मानव जाति एक है, उसमें ऊँच-नीच, छूत-अछूत, जातियों का विभेद करना उचित नहीं है। जातियाँ पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों और कीड़े-मकोड़ों में होती हैं जिन्हें दूर से देखकर उनकी जाति-गाय, भेड़, बकरी, ऊँट, हाथी, बरगद, नीम, साँप, बिच्छू आदि पहचान ली जाती है, लेकिन मनुष्य समाज में ऐसा कोई पार्थक्य भेद नहीं है। इस प्रकार विश्व का मानव-समाज एक है और उसकी एक ही मनुष्य जाति है दूसरी नहीं: (एकैव जातिर्लोके सामान्या न पृथक्विद्या)।8

बुद्ध की दूसरी स्थापना करुणा की भावना पैदा करना था। मानव मात्र में ही नहीं, जीव-जन्तुओं के प्रति भी मनुष्य के मन में करूणा रहे, तभी वह उन्हें संरक्षण और सुरक्षा प्रदान कर सकता है। इस संसार में जंगम, स्थावर, जलचर, थलचर, नभचर जीव, जो छोटे अथवा बड़े, बलशाली या निर्बल हैं या मध्यम आकार के हैं, दिखाई पड़ने वाले अथवा दिखाई न पड़ने वाले हैं, दूरस्थ अथवा समीपस्थ हैं, उत्पन्न हो चुके हैं अथवा उत्पन्न होने वाले हैं, सभी के प्रति सुख-शान्ति की भावना, करूणा, उसी प्रकार रखनी चाहिये जैसे एक माता अपने इकलौते पुत्र की रक्षा और सुख शान्ति के लिये अपना सब कुछ त्याग कर भी प्रयत्नशील रहती है।

करुणा, प्रज्ञा से नियंत्रित होनी चाहिये। प्रज्ञा के अभाव में करुणा पराभव की ओर ले जा सकती है। इसके लिये तथागत ने 'मध्यम मार्ग' अपनाने का संदेश दिया है। यही सोच-विचार कर चलने वाला मार्ग, सम्यक् मार्ग है।

मनुष्य और पशु में केवल अन्तर यही है कि मनुष्य के पास बुद्धि है। वह करणीय और अकरणीय में भेद कर सकता है। लेकिन जब वह अज्ञान के अंधकार में डूब जाता है, अंधविश्वासों और पाखण्डों तथा आडम्बरों में जकड़ जाता है अथवा मादक पदार्थों के सेवन से उसकी बुद्धि भ्रष्ट और विनष्ट हो जाती है, तब वह करणीय और अकरणीय में, खाद्य और अखाद्य में, शील और दुस्शील में अंतर नहीं कर पाता और वह अपनी मानवीय गरिमा को खो बैठता है। इस विषय में बुद्ध द्वारा दिये गये दो उपदेश 'पराभव सुत्त' और 'वषल सुत्त'9 विशेष रूप से पठनीय, मननीय और करणीय हैं।

अनेक लोग अपने तथा अपने परिवार के सुख शान्ति और कल्याण के लिये वृक्षों, नदी, नालों, पर्वतों, तीर्थों, देवी-देवहरों की शरण में जाते हैं लेकिन उनसे उन्हें सुख शान्ति नहीं मिलती, कल्याण भी नहीं होता है, क्योंकि वे उत्तम शरण नहीं हैं। सुख-शान्ति और कल्याण के लिये स्वयं प्रयास करना होगा। अन्धविश्वास और अज्ञान में डूबे हुए लोगों को सचेत करते हुए बुद्ध ने कहा था ''उठो उद्यम करो, यदि तुम्हें, तुम्हारे विचारों का उद्यमी साथी न मिले तो शेर की भाँति अकेले ही विचरण करो, लेकिन आलसी दुस्शील व्यक्ति को साथी न बनाना।'' अपना दुःख, तुम्हें, स्वयं ही दूर करना होगा, क्योंकि तुम्हीं अपने मालिक हो दूसरा कोई (परा -अपरा शक्ति) तुम्हारा मालिक नहीं हो सकता। 'अत्ताहि अत्तनोनाथो कोहिनाथोपरोसिया'।10 इसलिये हे मानव! अपनी सुख शान्ति और कल्याण प्रगति के लिये तुझे ही अपना मार्ग तय करना होगा, तुझे ही अपना प्रकाश स्तंभ (अप्प दीप) बनाना होगा।

बुद्ध ने यह भी कहा था कि ''प्रमाद या आलस्य मनुष्य की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है वह मनुष्य का, उसी के अंदर बैठा हुआ सबसे बड़ा शत्रु है।''11 शरीरधारी शत्रु तो दिखाई पड़ता है, उसे देखकर कोई भी सचेत और सतर्क हो सकता है, लेकिन प्रमाद, आलस्य तो दिखाई भी नहीं पड़ता और सदैव साथ ही रहता है। इस आलसरूपी महाशत्रु पर, उद्यम, प्रयास (अप्रमाद) से ही विजय प्राप्त की जा सकती है। अस्तु, प्रगति-शान्ति चाहने वाले व्यक्ति, समाज और देश के लिये उत्साह एवं उद्यम अत्यावश्यक है। आलस्य या प्रमाद की भाँति अज्ञान भी मनुष्य की शान्ति और प्रगति की हानि करता है। इस अविद्या अज्ञान से, ज्ञान-प्रदीप का प्रकाश क्षीण हो जाता है। विश्व के जो देश- चीन, जापान, कोरिया आदि ने, बुद्ध के इन सिद्धान्तों को जीवन में उतारा है उनका आचरण किया है, वे सुखी और धन-जन से सम्पन्न हैं। वहीं भारत जैसे देश जो उन सिद्धान्तों की अवहेलना करते रहे हैं, यदि हम आज तथागत के बताये सिद्धान्तों को पुर्नजीवित कर उसका अनुगमन करने लगें तो हमारा देश भी एक विकसित और सुसम्पन्न देशों की श्रेणी में अतिशीघ्र अपना स्थाना बना लेगा।

विश्व शान्ति अथवा मानव मात्र की सुख-शान्ति के लिये बुद्ध ने 'जियो और जीने दो' का सिद्धांत दिया है। जहाँ कोई भी व्यक्ति अथवा समाज या राष्ट्र, यह चाहता है कि वह तो जीवित रहे और आरामपूर्वक रहे, लेकिन उसका पड़ोसी सुख-शान्ति से न रहने पाये, वहीं अशान्ति की चिनगारी फूटती है। यही विद्वेषभाव है। विद्वेषभाव के अलावा तृष्णा भी मनुष्य को अमन चैन से नहीं बैठने देती।

शान्ति के लिये तृष्णा-लोभ, मोह, द्वेष, ईर्ष्या भाव को त्यागना होगा तभी वास्तविक शान्ति या परम शान्ति, बुद्ध के शब्दों में निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है (तण्हक्खयो विरागो निब्बानों)।

शान्ति स्थापना के लिये बुद्ध की यह भी स्थापना थी कि वैर, वैर से दूर नहीं होता। वैर को अवैर भाव (मैत्री भावना) से ही जीता जा सकता है। यही प्राचीनकाल से चला आ रहा सिद्धान्त:

''न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।

अवेरेन च समन्ति एस धम्मो सनन्तनो।।''12

बुद्ध ने स्वयं अंगुलिमान डाकू, नीलगिरि नामक भयंकर और हिंसक हाथी, काश्यप बन्धुओं के यहाँ विषधर नागों,

आलवक जैसे यक्षों को मैत्री बल से ही जीता था और उन्हें विनीत कर शिष्य बनाया था।

बुद्ध धर्म ही दुनिया का एक ऐसा अनोखा धर्म है जो संसार के विभिन्न भूभागों, देशों और प्रदेशों में, सम्पूर्ण दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया, मध्य एशिया, यूरोप और अमेरिका के देशों में फैला और फैल रहा है, लेकिन कहीं भी खून की एक बूँद भी नहीं गिरी। उनके उपदेश लोगों के दिलों में बसते जा रहे हैं। क्यों? क्योंकि उनमें कोई आडम्बर नहीं है। वे शत्रुता को मिटाकर, मित्रता स्थापित करते हैं।

सामाजिक भेद-भाव विषमतावादी विचार- जाति व्यवस्था, वर्णव्यवस्था, छुआछूत, ऊँच-नीच, वर्ण-अवर्ण- आदि मानवीय शान्ति और समृद्धि के शत्रु हैं। बुद्ध ने स्वयं अपने हाथों इस सामाजिक विषमता के जाल को ध्वस्त कर दिया था। मानवीय समता की स्थापना के लिये बुद्ध ने सुणीत भंगी, उपाली नाई, चाण्डालिका चण्डाल कन्या, आम्रपाली गणिका, रानी प्रजापती गौतमी को दीक्षा देकर भिक्षु-भिक्षुणी बनाया उन्हें समाज में आदर सम्मान दिया। ज्ञात ही है कि बौद्ध शासन संघ का संविधान (विनय पिटक) उपाली द्वारा बनवाकर मानवीय समानता ही नहीं, मानवीय गरिमा की भी प्रतिष्ठापना की गई थी।

संदर्भ सूची

1. बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष-वी0पी0 बापट, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2010, पृ0सं0 (प.पपप)
2. निदान कथा जातक, गोतमस्स उप्पादों (रामअवध पाण्डेय, रविनाथ मिश्र) पालिप्राकृत अपभ्रंश संग्रह, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 1993, पृ0सं0 42-46
3. लेफमैन, ललितविस्तर, 437/13
4. बुद्धचरित 2/41
5. महावस्तु-जि0-1/347/16-19
6. लेफमैन, ललितविस्तर, 417/4-7
7. बुद्धचरित, 15/42
8. दिव्यावदान, पृ-323/14
9. वसल सुत्त; चतुभाण वारपालि, पृ0-149, धम्मपद, 12/4
10. धम्मपद 14/4
11. महावग्ग, पृ0 62
12. महावग्ग, पृ0 62-64

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जाटव, डी0आर0 'द ह्यूमनिज्म आफ बुद्ध' इना श्री पब्लिकेशन, जयपुर, 1998
2. कस्सप, जगदीस 'चुल्लवग्ग' नवनालन्दा महाविहार, 1956
3. कौसल्यायन, आनन्द 'अंगुत्तर निकाय' (हिन्दी), महाबोधि सभा, कलकत्ता, 1958-59

4. शास्त्री, द्वारिकादास 'महावग्ग', वाराणसी, 1996

5. शास्त्री, द्वारिकादास 'धम्मपद', वाराणसी, 2000

6. वापट, वी0पी0 'बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष', प्रकाशन विभाग, सूचना-प्रसारण मंत्रलाय, भारत सरकार, 2010

7. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र 'बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास', उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ 2010

8. रीजडेविड्स, टी0डब्लू0 'बुद्धिस्ट इण्डिया', मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, 1999

9. गैरोला, वाचस्पति 'भारतीय संस्कृति और कला', उ0प्र0 हिन्दी संस्थान लखनऊ, 2006

10. अग्रवाल, वासुदेव शरण 'भारत की मौलिक एकता', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2017

11. वाजपेयी, शिवाकांत 'प्रारम्भिक बौद्धधर्म संघ एवम् समाज', ज्ञान भारती पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2002

12. वापट, पी0वी0 'बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष' प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, 1956

13. रीजडेविड्स, टी0 डब्लू0 'बुद्धिस्ट इण्डिया' मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिसर्स, 1999

14. देशपाण्डे, अरूना 'जर्नी एक्रास बुद्धिस्ट इण्डिया' जायको पब्लिशिंग हाउस, 2013

15. लाहिरी, नयनजोत 'द आर्कियोलॉजी आफ इण्डियन ट्रेड रूट्स (अपटू 200 बीसी)' ओयूपी इण्डिया पब्लिकेशन, 2000

16. हेगडे, राजाराम 'शंुगा आर्ट:कल्चरल रिफलेक्सन' शारदा पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, 2002

17. दासवानी, रेखा 'बुद्धिस्ट मोनस्ट्रीज एण्ड मोनस्टिक लाइफ इन एंशिऐन्ट इण्डिया (थर्ड सेन्चुरी बी0सी0-सेवेन्थ सेन्चुरी ए0डी0)' आदित्य पब्लिकेशन, इण्डिया, 2007

18. शॉ, जूलिया 'बुद्धिस्ट लैण्ड स्केप इन सेन्ट्रल इण्डिया';(साँची हिल्स एण्ड आर्कियोलॉजी आफ रिलीजियस एण्ड सोसल चेंज-थर्ड सेन्चुरी बी0सी0 टू फिफ्थ सेन्चुरी ए0डी0) लेफ्ट कॉस्ट प्रेस, 2013

19. दत्त, सुकुमार 'बुद्धिस्ट मोंक एण्ड मोनिस्ट्रीज आफ इण्डिया' मोती लाल बनारसी दास पब्लिसर्स, दिल्ली, 1988